नया-सृजन

विभागीय हिंदी पत्रिका

पहला अंक, सितंबर, 2014

हिंदी विभाग

कन्या महाविद्यालय, गुवाहाटी-781021 (असम)

सलाहकार: डॉ. रीनारानी बरदलै

संपादक मंडल :

अब्दुल हन्नान अहमद

डॉ. जाकिर हुसैन

डॉ. नवकांत शर्मा

सदस्यगण:

- **मेनका देवी , सुबला सिंहा, ममी कलिता**

साजसज्जा (मुख्य आवरण)

डॉ. जाकिर हुसैन

मुद्रक: जेएम कंप्यूटर प्रिंटर्स

मूल्य: 30 रुपये मात्र

Office of the Principal

KANYA MAHAVIDYALAYA

Geetanagar, Guwahati-781021

शुभ-संदेश

हिंदी दिवस (14 सितंबर) के विशेष अवसर पर हमारे महाविद्यालय के हिंदी विभाग के अध्यापक समेत सभी विद्यार्थियों ने हिंदी दिवस धूम-धाम से मनाने के साथ-साथ एक

विभागीय पत्रिका "नया-सृजन" प्रकाशन करने का निर्णय लिया है। यह एक पुनीत कार्य तथा सराहनीय सकारात्मक कदम है। इस सुदंर प्रयास के लिए मैं हार्दिक धन्यवाद देती हूं।

यह संपूर्ण महाविद्यालय के ही एक सार्थक एवं बलिष्ठ प्रयास है। इस कार्य की उचित अग्रगति में ढेरों शुभकामनाएं एवं बधाइयां देती हूं।

(रीनारानी बरदलै)
अध्यक्ष
कन्यामहाविद्यालय
गीतानगर, गुवाहाटी-21

DEPARTMENT OF HINDI

Gauhati University, Guwahati

Gopinath Bordoloi Nagar, Guwahati-781014, Assam

Dr. Dilip Kumar Medhi
Professor & Head

Q. No. 4
Gauhati University Campus
Ph. No. 98640-35385
e-mail: dkmedhigu@gmail.com

शुभ-कामनाएं

मुझे अपार हर्ष हो रहा है कि हिंदी विभाग, कन्या महाविद्यालय, गौहाटी की ओर से 'हिंदी दिवस' के पावन अवसर पर ***'नया-सृजन'*** का

प्रथम प्रकाशन सामने आ रहा है। नई-नई सृष्टियों के सृजन में निस्संदेह यह पत्रिका अहम भूमिका निभायेगी।

'नया-सृजन' के साथ-साथ इस पत्रिका से संबध्द सभी सदस्यों से मेरी हार्दिक शुभ-कामनाएं हैं।

दिलीप कुमार मेधि

अनुक्रमिका

संपादकीय 06

भारत की राष्ट्रभाषा: समस्याएं एवं समाधान 07

अब्दुल हान्नान अहमद

सहनशीलता की प्रतिमुर्ति 'निर्मला' 12

डॉ. जाकिर हुसैन

असम के प्रथम हिंदी प्रचारक श्रीमंत शंकरदेव

19

डॉ. नवकांत शर्मा

शिक्षा की आवश्यकता

26

मेनका देवी

प्रेमचंद

28

संगीता राय

मेरा हिंदी प्रेम 29

ममी कलिता

हिंदी दिवस के अवसर पर विशेष 35

खुशबू झां

पेड़ की विपदा (कविता) 35

सुबला सिंहा

जीवन (कविता) 40

मेनका देवी

संपादकीय

कन्या महाविद्यालय के हिंदी विभाग के एक मासुम स्वप्ना की सार्थक परिणाम है "नया-सृजन"। विभाग की ओर से इस पत्रिका का प्रकाशन विभाग का पहला प्रयास है। इसके जरिए नयी पीढ़ी के सामने एक सर्जनात्माक झांकी प्रस्तुत किया जा रहा है। साहित्य वास्वव, कल्पना, प्रतिभा तथा कला का मधुर संमिश्रण है। हम वास्वत को नजर अंदाज नहीं कर सकते और कल्पना को भी स्वीकार कर नहीं सकते। इसलिए एक संतुलित और संमिश्रित कला ही साहित्य है। आज युग-यथार्थ यह संकेत करता है कि दौरों, भागों और कुछ हासिल करो। परंतु शताब्दी प्राचीन सभ्यता यह सीखाता है कि आस्था तथा सकारात्मक सोच के साथ आगे बढ़ो और दूसरों को भी आगे बढ़ने की रास्ता दिखाओ, प्रेरणा दो।

"नया-सृजन" हमारी हृदय-संतान है। इसका अंकुरण, गर्भधारण, पल्लवन तथा जन्म यंत्रणा अपने आप में एक रोमांचकारी अनुभव है। इस सदप्रयास में जिन महानुभवों ने हमें सहयोग दिया सबके प्रति सादर प्रणाम हैं। महाविद्यालय के अध्यक्ष महोदय समेत सभी शिक्षक कर्मचारी, छात्राओं को भी साधुवाद देता हूं। आपका अकृत्रिम आदर हमें सदा मिलता रहें।

जय हिंद!

जय हिंदी!!

अब्दुल हन्नान अहमद

डॉ. जाकिर हुसैन
डॉ. नवकांत शर्मा

संपादक मडल

भारत की राष्ट्रभाषा: समस्याएं एवं समाधान

अब्दुल हन्नान अहमद
विभागाध्यक्ष

भाषा भावों की अभिव्यक्ति का सबल साधन है। भाषा के सहयोग से ही किसी देशकाल का साहित्य और संस्कृति अक्षुण्ण रहती है। राष्ट्रभाषा किसे कहते हैं? वह भाषा जो समग्र राष्ट्र के लिए संपर्क का कार्य संपन्न करें, जिसके माध्यम से एक राष्ट्र के विविध भाषा-भाषी व्यक्ति अपने भावों का आदान-प्रदान सरलता से कर सकें, जिसमें राष्ट्र-विशेष का साहित्य एवं संस्कृति जैसी अमूल्य निधियां संजोयी हों वही राष्ट्रभाषा है।

राष्ट्रभाषा की व्याख्या करते समय यह प्रश्न स्वभावत: उठता है कि राष्ट्रभाषा का होना किसी राष्ट्र के लिए इतना अनिवार्य क्यों? राष्ट्रभाषा में कौन सी राष्ट्रीय अनिवार्यता निहित है?

एक राष्ट्र के विविध भाषा-भाषी व्यक्तियों में भावात्माक ऐक्य स्थापित हो सके, इसके लिए अनिवार्य है कि वे आपस में विचारों की अभिव्यक्ति सरलता से कर सकें और यह कार्य 'एक भाषा' द्वारा ही संभव है। विविध भावनाओं को संपूर्ण जनता नहीं समझ सकती, विविध प्रांतीय भाषाओं में विचाराभिव्यक्ति प्रांत विशेष के निवासियों द्वारा ही संभव होती है, अत: किसी देश के लिए एक राष्ट्रभाषा का होना अनिवार्य है।

राष्ट्रीय सम्मान की दृष्टि से भी किसी राष्ट्रभाषा की अनिवार्यता लक्षित होती है। राष्ट्र के निवासी दो व्यक्ति अपने देश में रहते हुए दूसरे राष्ट्रों की भाषा में विचारों का आदान-प्रदान करें यह उस राष्ट्र की भाषिक एवं साहित्यिक दरिद्रता का द्योतन करता है।

राष्ट्रभाषा के रूप में हिंदी का समर्थन: राष्ट्रभाषा की इसी आवश्यकता को देखते हुए भारतीय विद्वानों में भी अपने राष्ट्र के लिए 'एक भाषा' चुनने की इच्छा जागृत हुई और जिस समय देश में स्वतंत्रता आंदोलन जन्म ले रहा था, विदेशी अंग्रेजी शासन की दासता की बेड़ियों को झटक देने की बलवती इच्छाएं देश के साहित्यकारों, कर्णधारों में वेग उत्पन्न कर रही थी, देश के

लिए राष्ट्रभाषा चुनने का भी प्रस्ताव उठाया गया। उस समय बंगाल के देवचंदसेन, बंकिम चंद, माइकल मधुसूदन दत्त, द्विजेंद्र लाल राय ने 'हिंदी' को राष्ट्रभाषा बनाने का आग्रह किया।

स्वतंत्रता-प्राप्ति के पश्चात सन् 1948 ई. में राष्ट्रभाषा का यह प्रश्न संविधान में रखा गया और राजर्षि पुरुषोत्तम दास टंडन, राजगोपालाचारी तथा गांधी जी ने राष्ट्रभाषा के लिए 'हिंदी' को ही योग्य ठहराया और 14 सितंबर, 1949 ई. से इसे राष्ट्रभाषा और राजभाषा के रूप में लागू करने का निर्णय लिया गया।

हिंदी ही राष्ट्रभाषा क्यों? राष्ट्रभाषा के संदर्भ में प्रांतीय भाषाओं की हिंदी से तुलना करते हुए जो समान साहित्यिक, अभिव्यवस्थात्मक समृद्धि प्रस्तुत की गई वह तो पूर्णतया ठीक है, किंतु विचारणीय यह है कि हिंदी के द्वारा भारत के जिस विशाल समूह के भावों की अभिव्यक्ति होती है, वैसी ही तमिल, तेलगू, राजस्थानी, बंगला, मराठी, गुजराती आदि भाषाओं के द्वारा नहीं होती? दूसरी बात यह है कि हिंदी भाषा का विस्तार-क्षेत्र कच्छ से कामरूप और कश्मीर से कन्याकुमारी तक है देश के कोने-कोने में इसके बोलने वाले, पाये जाते हैं। अन्य भाषाएं केवल अपनी

प्रांतीय सीमा में ही बोली और समझी जाती है। इस प्रकार विस्तृत क्षेत्र एवं भावात्मक ऐक्य स्थापित करने की प्रबल शक्ति के कारण ही हिंदी राष्ट्रभाषा बनी।

राष्ट्रभाषा हिंदी की समस्याएं- विद्वानों द्वारा हिंदी की अनेक कमियों की ओर इंगित किया गया। ये कमियां अथवा समस्याएं निम्नलिखित हैं-

—. **पारिभाषिक शब्दावली की समस्याएं-** हिंदी राष्ट्रभाषा की सर्वप्रथम और सर्वप्रमुख समस्या पारिभाषिक शब्दावली की है। राष्ट्रभाषा का प्रयोग देश-विदेश के शासन, न्याय एवं ज्ञान-विज्ञान तथा साहित्य आदि सभी क्षेत्रों में होता है। हिंदी का प्रयोग भी ज्ञान-विज्ञान और न्याय के क्षेत्र में सफलता के साथ हो सके, इसके लिए आवश्यक है कि इनसे संबंधित नवीन पारिभाषिक शब्दावलियों का निर्माण किया जाए तभी ज्ञान और विज्ञान संबंधी ग्रंथ हिंदी में सुलभ हो सकेंगे, शासन और न्याय में उसका प्रयोग हो सकेगा।

धीरे-धीरे देश के विद्वान इस ओर जागरुक होकर श्रम करने लगे हैं और नयी-नयी पारिभाषिक शब्दावलियों का निर्माण किया जाने लगा है।

二. **व्याकरण की समस्याएं-** विद्वानों ने शुद्ध हिंदी लिखने और बोलने के मार्ग में दो विशेष कठिनाइयों की ओर संकेत किया है-

1. **हिंदी में 'ने' परसर्ग** का प्रयोग निश्चित नहीं है। अत: अन्य भाषा-भाषी को इसे सीखने में कठिनाई होती है।

   वस्तुत: हिंदी के संबंध में यह पूर्णत: कल्पित दोष है। 'ने' परसर्ग सकर्मक क्रिया, भूतकाल एवं उसके छ: भेदों में प्रयुक्त होता है, जिसे प्रत्येक भाषा-भाषी सुविधा से सीख सकता है।

2. **हिंदी-लिंग व्यावस्था** अत्यंत जटिल है। लिंग परिवर्तन कब, कहां और कैसे बदल जाता है, इसका समझना टेढ़ी खीर है।

   किंतु यदि ध्यान से देखा जाए तो यह स्पष्ट हो जाता है कि हिंदी का लिंग विधान अन्य भाषाओं की अपेक्षा सरल है। अन्य भाषाओं में जहां तीन लिंग

पाये जाते हैं, वही हिंदी में सिर्फ दो स्त्रीलिंग और पुलिंग।

3. **वर्तनी की समस्या-** हिंदी का सबसे बड़ा दोष यह बताया जाता है कि इसमें वर्तनी के विभिन्न प्रयोग किए जाते हैं, यथा- जायेंगे, जाएगें, जायगें, जावेंगे इसमें कौन सा रूप शुद्ध है जिसका प्रयोग होना चाहिए। अनुस्वार एवं चंद्रबिंदु के संबंध में भी वही समस्या है।

   इसमें सुधार लाने के लिए विविध रूपों को हटाकर केवल एक रूप को अपनाने की राय दी गई है।

4. **लिपि की समस्या–** समस्याओं का संकेत करते समय हिंदी की नागरी लिपि की मुद्रण, टंकन, वर्णाक्षरों की अधिकता तथा लेखक की कठिनाई की ओर भी विद्वान वर्ग संकेत करना नहीं भूले हैं और ऐसा कहते हुए रोमन लिपि का समर्थन किया है।

लिपि के संबंध में संकेत की गई कमियां तर्कहीन हैं। दूसरे थोड़ी-बहुत ऐसी तो प्रत्येक लिपि में पाई जाती है केवल हिंदी में नहीं।

राष्ट्रभाषा हिंदी के संबंध में उठाई गई ये सभी समस्याएं महत्वपूर्ण नहीं है। हिंदी भाषा में साक्षरता की कमी को दूर करने के लिए सरकार ने देश की सभी शिक्षण संस्थाओं में हिंदी अनिवार्य कर दी है तथा राजभाषा के रूप में हिंदी और अंग्रेजी दोनों ही भाषाओं का व्यवहार हो रहा है।

XXXX

सहनशीलता की प्रतिमुर्ति 'निर्मला'

डॉ. जाकिर हुसैन
सहायक अध्यापक

महान उपन्यासकार मुंशी प्रेमचंद द्वारा रचित **'निर्मला'** नारी उत्पीड़न एवं शोषण को उजागर करने वाला प्रथम हिंदी उपन्यास है। इलाहाबाद से प्रकाशित होने वाली महिलाओं की पत्रिका 'चांद' में नवंबर, 1925 से दिसबंर 1926 ई. तक यह उपन्यास विभिन्न खंडों में प्रकाशित हुआ। इसे मुंशी प्रेमचंदजी ने दहेज प्रथा और अनमेल विवाह के आधार पर लिखा है।

महिला-केंद्रित साहित्य के इतिहास में इस उपन्यास का विशेष स्थान है। इस उपन्यास की कथा का केंद्र और मुख्य पात्र निर्मला नाम की 15 वर्षीय सुंदर और सुशील लड़की है। वह पूरे उपन्यास पर छायी रहती है। निर्मला का विवाह एक अधेड़ उम्र के व्यक्ति से कर दिया जाता है जिसके पूर्व पत्नी से तीन बेटे हैं। निर्मला का चरित्र निर्मल है, परन्तु फिर भी समाज में उसे अनादर एवं अवहेलना का शिकार होना पड़ता है। उसकी पति परायणता काम नहीं आती। उस पर संदेह किया जाता है, परिस्थितियां उसे दोषी बना देती है। अत: निर्मला विपरीत परिस्थितियों से जूझती हुई मृत्यु को प्राप्त करती है। 'निर्मला' उपन्यास में अनमेल विवाह और दहेज-प्रथा की दु:खांत कहानी है। उपन्यास के अंत में निर्मला की मृत्यु इस कुत्सित सामाजिक प्रथा को मिटा डालने के लिए एक भारी चुनौती है।

'निर्मला' एक चरित्र प्रधान उपन्यास है। इस उपन्यास के चरित्र)निर्मला(में दो बातें प्रधान रूप से पायी जाती है। एक तो प्रेम और कर्तव्य की ओर आधिक झुकती है। दूसरे, उसमें सहनशीलता और धैर्य अधिक है। इन्हीं दो बातों से उसका चरित्र निर्मित है। प्रांरभ में जब घर में विवाह की बात चलती है, तो

उसके हृदय में बड़ी उत्सुकता होती है और उसका विवाह जब बाबु तोताराम से निश्चित हो जाता है, तो जो मानसिक स्थिति निर्मला की होती है वह उसके भावी जीवन का संकेत करती है। वह अपने विवाह की सूचना पाकर एक अज्ञात भय से डर जाती है। उसके मन में कोई अभिलाषा नहीं थी बल्कि शंकाएं, चिंताएं और भीरु कल्पनाएं थी। इसलिए उसे डरावने सपने आते हैं। *वह देखती है कि वह एक नदी के किनारे अकेली खड़ी है और वहां कोई नहीं है। थोड़ी देर बाद एक छोटी-सी नांव आती दिखाई देती है जो टूटी हुई है। वह उसमें बैठकर नदी पार करती है लेकिन उसे मालूम होता है कि नांव अब डूब जाएगी और उसकी नींद खुल जाती है।*

किसी का विवाह तय हो जाने पर उसमें लज्जा या प्रसन्नता का भाव उत्पन्न हो सकता है, किंतु अपने विवाह का प्रसंग सुनकर निर्मला गंभीर हो जाती है, जैसे वह अपने वैवाहिक जीवन के प्रति शंकालु हो और आभास होता है कि निर्मला अपने विवाह की बात सुनकर प्रसन्नता अनुभव नहीं करती। वह जब से बाबु तोताराम के यहां आती है, गृहस्थी का भार संभाल लेती है, किंतु पत्नीत्व के धर्म का पालन नहीं कर पाती। बाबु तोताराम के

प्रति उसके हृदय में जो आकर्षण होना चाहिए, वह हमें प्रारंभ में दृष्टिगोचर नहीं होता क्योंकि, जैसा कि प्रेमचंद ने उसके मुख से कहलवाया है, बाबू तोताराम की आयु उसके पिता के समान है। जिस प्रकार उसे अपने पिता के सामने संकोच और शील का अनुभव होता था और वह अपने अंग समेट लेती थी उसी प्रकार बाबू तोताराम को देखकर वही व्यवहार करती है, इसीलिए यद्यपि बाबू तोताराम खर्च बहुत करता है, दाम्पत्य प्रेम का व्यवहारिक उपयोग भी करता है, किंतु निर्मला प्रसन्न नहीं हो पाती। एक दिन सियाराम के बहुत मार खाने पर और उसके मन में कर्तव्य भावना का उदय होता है, क्योंकि वह सोचती है कि मैं पति को प्यार तो कर नहीं सकती। उसके हृदय का विकास जो अवरुद्ध हो गया था, वह बच्चों की देख रेख और कर्तव्य पालन में प्रकट होता है। इसी कर्तव्य का पालन उसने आगे बराबर किया है। बच्चों के प्रति उसके मन में कोई कुभावना दृष्टिगोचर नहीं होती और इसी कारण पति के संदेह का वह कारण बनती है। पर वह इसकी परवाह नहीं करती। वास्तव में एक अतृप्त नारी हृदय किस प्रकार मातृ हृदय में परिणित हो सकता है, इसका प्रत्यक्ष उदाहरण निर्मला का चरित्र है। यह अतृप्त हृदय के लिए संतोष का साधन था, वैसे पति के घर आने पर उसने कभी सुख का रूप

नहीं देखा।

सहनशीलता की प्रतिमूर्ति तो निर्मला है ही इसके अतिरिक्त वह धैर्यवान भी है। वह मनसाराम पर किये गये संदेह को केवल इसलिए संदेह बना रहने देना चाहती हैं कि सफाई देने की चेष्टा में अथवा मनसाराम के पक्ष ग्रहण करने पर पति का संदेह और भी दृढ़ हो जायेगा, परिणामस्वरूप वह मन की भावनाओं को मन में दबे रहने देना चाहती है। रूक्मिणी, जो निर्मला के चरित्र पर बराबर दोषारोपण करती रहती है, उन्हें भी वह चुपचाप सहन करती रहती है, मनसाराम के मृत्यु के कारण उसे जितना दु:ख होता है, वह पति के सामने नहीं प्रकट करती, क्योंकि उसे संदेह है कि पति का संदेह कही ओर भी दृढ़ न हो जाए। जब तक वह जीवित रहती है, वह अपनी सहनशीलता को चरमसीमा पर पहुंचा देती है। कहीं भी कटुता, आक्रोश, ईर्षा या द्वेष का चिन्ह तक हम उसमें नहीं पाते। वास्तव में केवल एक स्थान पर, अर्थात अस्पताल जाते समय पति का सामना करती है, किंतु वहां भी वह केवल अपने कर्तव्य का पालन करने की भावना से ही वहां पहुंचती है। अत: वह अपने कर्तव्य की ओर जीवन पर्यंत उन्मुख रहती है।

निर्मला की सहनशीलता का और एक निदर्शन तब मिलता है जब मनसाराम की अकाल मृत्यु हो जाती है। अपने बेटे की मृत्यु से तोताराम निराश और हतोत्साह हो जाते हैं। धन की ओर उदासीन रहने के कारण उनकी आमदनी भी कम हो जाती है। मकान नीलाम हो जाने और पुत्री आशा के जन्म लेने से निर्मला में भी बहुत परिवर्तन हो जाता है। अब उसे घर चलाने की भी बहुत फिक्र होने लगी। वह एक-एक पैसा बचाने लगी। परंतु उसी समय मंझले पुत्र जियाराम ने उसके गहनों का संदुक चुरा लिया और वह भिखारिन-सी बन गयी। फिर भी वह कुछ न बोली, क्योंकि वह बड़ी सहनशील नारी थी। जब पुलिस खोज करने आयी, तो उसने अपने पास जो रूपये बचे हुए थे, वह दे दिये और अपने घर की इज्जत बचायी।

सुधा निर्मला की घनिष्ठ सहेली है और डॉ. भुवनमोहन सिंहा की पत्नि है। दोनों के पारस्परिक संबंधों से लगता है कि *दोनों ही सांसारिक जीवन में अतृप्त सुधा ने एकबार निर्मला से कहा था की जीवन में केवल बाह्य सुख ही सब कुछ नहीं है।* इसका यह अर्थ है कि भुवन और सुधा भौतिक दृष्टि से सुखी थे, किंतु संभवत: सुधा के मन का मेल भुवनमोहन के मन से नहीं है;

इसीलिए जब भुवनमोहन की मृत्यु हो जाती है, तो उसके कथन में इतनी कटुता आ जाती है कि एक भारतीय नारी के मुख से ऐसे शब्द आश्चर्यजनक प्रतीत होते हैं। सुधा क्रांतिकारी नहीं है। इसके इस कथन से कि 'इस सौभाग्य से वैधव्य अच्छा है' में कहीं क्रांति की भावना दृष्टिगत नहीं होती वरन् असंतोषपूर्ण जीवन से मानो सुधा को छुट्टी मिली या ऐसे व्यक्ति से छुटकारा मिला, जिससे उसके मन का मेल नहीं होता था। यह क्रांति की भावना से ओतप्रोत कथन न होकर किसी अवांछित व्यक्ति से छुटकारा पाये हुए व्यक्ति के उन्मुक्त अंतरमन की अभिव्यक्ति प्रतीत होती है। वह पुरुष की दासी बनकर नहीं रहना चाहती (इसका अभिप्राय: यह भी नहीं कि वह अपने वैधव्य से प्रसन्न है)। सुधा का व्यक्तित्व स्वतंत्र और निजी है। वह पति-देवता की भावनाओं का अंधानुकरण नहीं करना चाहती। वह अपना व्यक्तित्व रखती है, क्रांतिकारी व्यक्तित्व नहीं है। जब भुवनमोहन ने निर्मला पर अत्याचार किया, तभी उसका मन खिन्न हो गया और तभी उसने यह वाक्य कहें। लेकिन सुधा का हृदय स्नेही है। कोई कारण ऐस अवश्य था जिसके कारण वह अपने पति के साथ सुखी नहीं थी। अपने इस स्नेह का परिचय वह निर्मला को अपने संबंध में देती है। सुधा अनिवार्यत: बुरी नहीं है, पर संभवत: पति के साथ अच्छे

नहीं थे। निर्मला की आर्थिक स्थिति जानकर वह किस प्रकार गुप्त रूप से रूपया भिजवाती है। उसने अपने पुत्र को अंधविश्वास के कारण मर जाने दिया। केवल निर्मला के आश्वासन के कारण। यह उसकी सहृदयता, सत्यता एवं स्नेहशीलता का परिचायक है।

भारतीय समाज में नारी की दशा अत्यंत दयनीय है। वह बचपन में पिता, यौवन में पति तथा वृद्धावस्था में पुत्र के अधीन में रहकर पुरूष वर्ग की गुलामी करती है। इस उपन्यास में मुंशी प्रेमचंद ने निर्मला के माध्यम से ऐसे ही एक चरित्र का चित्रांकन किया है। निर्मला अपने जीवन में विभिन्न उतार-चढ़ाव की परिस्थितियों से गुजरती है। वह अपनी जिदंगी से चिड़चिड़ा हो जाती है। अंतत: वह अपनी मृत्यु के समय रुक्मिणी से कहती है-

“बच्ची को आपकी गोद छोड़ जाती हूं।अगर जीती जागती रही तो किसी अच्छे कुल में विवाह कर दीजियेगा। चाहे क्वांरी रखियेगा, चाहे विष देकर मार डालिएगा, पर कुपात्र के गले न मढ़ियेगा, इतना ही आप से मेरी विनय है।” अभागिन नारी निर्मला के जीवन की कहानी अत्यन्त करुण है। उपन्यास के वह आरंभ से अंत तक वह हमारी सहानुभूति प्राप्त करती है और अंत में हमें दो आंसू गिराने के लिए के लिए मजबूर करती है।

अत: निष्कर्ष के रूप हम यह कह सकते है कि ‘निर्मला’ यथार्थवादी शैली प्रस्तुत करती है। प्रेमचंद ने समाज की एक भयंकर समस्या लेकर उसे ज्यों-का-त्यों चित्रित कर दिया है। जब निर्मला और मनसाराम सम्मिलित रूप से तोताराम के अन्याय का प्रतिकार करते, तो वह क्रांतिकारी यथार्थवाद होता, पर प्रेमचंद की दृष्टि में और न भारतीय परंपरा एवं संस्कारों की दृष्टि से उचित था कि पिता या पति के विरुद्ध पुत्र या पत्नी विद्रोह करें। यदि यह विद्रोह होता तो भारतीय जीवन पर एक प्रश्नसूचक चिन्ह लग जाता। हमारे देश में जो परंपरा रही है, वह यही है कि घर का कर्त्ता यदि किसी समय अन्याय या अत्याचार भी करे, तो चुपचाप सहन करें। अत: निर्मला और मनसाराम का व्यवहार परंपरागत है, पर इतना भी अवश्य है कि दोनों ने अपनी सहिष्णुता और सहनशीलता से तोताराम जैसे व्यक्ति को अपनी ध्वनि द्वारा कुत्सित और प्रताड़ित करने का प्रयास किया है। दोनों की मृत्यु से तोताराम के व्यक्तित्व का खोखलापन सिद्ध हो जाता है। इससे बढ़कर और क्या बात हो सकती थी। अत: प्रेमचंद ने कलात्मक ढंग से यथार्थवाद का आश्रय ग्रहण किया है। निर्मला यद्यपि अंत में मृत्यु को प्राप्त होती है, पर अपनी परिस्थितियों से वह समाज को चुनौती दे जाती है। ‘गोदान’ में होरी की पराजय

में विजय है। उसी प्रकार निर्मला पराजित होकर भी विजयी होती है।

XXXX

असम के प्रथम हिंदी प्रचारक श्रीमंत शंकरदेव

डॉ. नवकांत शर्मा, सहायक अध्यापक

शेक्सपियर को छोड़कर जिस प्रकार अंग्रेजी साहित्य की कल्पना नहीं की जा सकती; रबींद्रनाथ को छोड़कर बांग्ला साहित्य की कल्पना नहीं की जा सकती; प्रेमचंद को छोड़कर हिंदी साहित्य की कल्पना नहीं की जा सकती; उसी प्रकार श्रीमंत शंकरदेव को छोड़कर असमिया साहित्य-संस्कृति की कल्पना नहीं की जा सकती। इन्होंने ही भक्ति गंगा को असम की भूमि में प्रवाहित किया। मध्ययुगीन भक्ति आंदोलन को श्रीमंत शंकरदेव ने

असम में नेतृत्व दिया था। साथ ही विभिन्न मार्ग एक भेदभाव से विभाजित तत्कालीन असमिया समाज को एक सूत्र में बांधने का भी सफल प्रयास किया था। इसलिए उन्हें असमिया जाति का जनक कहा जाता है। परंतु यही शंकरदेव का एकमात्र परिचय नहीं है। इन्होंने असमिया, संस्कृत आदि भाषाओं के अतिरिक्त ब्रजबुलि भाषा का भी प्रयोग साहित्य क्षेत्र में किया था। प्रख्यात गांधीवादी हिंदी सेवक काका साहेब कालेलकार ने इसीलिए श्रीमंत शंकरदेव को असम का सर्वप्रथम हिंदी प्रचारक माना। शंकरदेव के नाटक एवं बरगीतों में विशेष रूप से ब्रजभाषा का सार्थक प्रयोग परिलक्षित होता है।

भारतीय सभ्यता के अमूल्य संपद महाभारत में कहा गया है कि जब धर्म में ग्लानि उत्पन्न होता है तब कोई न कोई महापुरुष का अभ्युत्थान होता है। वह महापुरुष रहे ही उस जाति को नयी दिशा देकर अपनी महान भूमिका निभाती है। असमिया जाति के लिए श्रीमंत शंकरदेव ही वह महापुरुष जिन्होंने पूरी जाति को जागृत किया, नयी शिक्षा दी और पहचान दिलायी। सन 1449 में नगांव जिला के अंतर्गत आलिपुखुरी नामक स्थान में शंकरदेव का जन्म हुआ था। बचपन की अवस्था में माता-पिता

गुजर जाने के बाद दादी खेरसुति ने इनका पालन पोषण किया। पंडित महेंद्र कंदली के तत्वावधान में शिक्षाग्रहण के बाद शंकरदेव घर लौट आते है। सांसारिक जीवन में कटु अनुभव प्राप्त करने के बाद वे बारह वर्ष तक देश के विभिन्न तीर्थ स्थानों का पर्यटन करते थे। इसके बाद बरदोवा में जगदीश मिश्र नामक व्यक्ति से भागवत ग्रंथ की प्राप्ति होती है। विभिन्न सामाजिक, राजनीतिक और धार्मिक प्रतिकुल परिस्थितियों का सामना करते हुए भी उन्होंने अपने शुद्ध मार्ग पर अटल रहकर असमिया जाति का दिग्दर्शन किया। समाज के अवहेलित तथा उपेक्षित वर्गों को भी इन्होंने यथायोग्य स्थान दिया। विभिन्न देव-देवताओं के स्थान पर एक ईश्वर की भक्ति पर बल दिया गया-

एक देव एक सेव।
एक बिने नाई केव।।

समाज को नृत्य, गीत, अभिनय आदि के जरिए नया संदेश दिया गया। किरात, मिरि, कछारी, खासी, गारो, यवन, कंक, गोवाल, मलुक, रजक, तुरक, कुराच, म्लेछ, चंडाल, अंत्यज आदि संप्रदाय के लोगों को आदरपूर्वक एक शरणीया धर्मपंथा में दीक्षा दी गयी। इस प्रकार श्रीमंत शंकरदेव ने असमिया जाति का

आधार मजबुत किया। परम शिष्य माधवदेव के साथ असमिया संस्कृति, समाज एवं साहित्य को व्यापक समृद्धि प्रदान की।

महापुरुष शंकरदेव एक सफल कवि, भक्त, शास्त्रज्ञ अनुवादक, समाज निर्माता, कलाप्रेमी, मानवतावादी, नाटककार,गीतकार, अभिनेता, गायक, वाद्यनिर्माता एवं युगदृष्टा थे। उनके द्वारा लिखित तथा अनूदित साहित्य को निम्नलिखित रूपों में देखा जा सकता है:

1. काव्य–

)क (हरिश्चंद्र उपाख्यान)ख(रुक्मिणी-हरण काव्य)ग(बलिछलन)घ(अमृत-मंथन)ङ(अजामिल उपाख्यान)च(कुरुक्षेत्र

2. भक्ति संबंधी ग्रंथ-

)क(भक्ति प्रदीप)ख(भक्ति रत्नाकर)ग(निमि-नवसिद्ध संवाद

)घ(अनादि

3. अनुवाद-

)क(भागवत)ख(उत्तराकांड

4. एकांकी नाटक-

)क(पत्नी प्रसाद)ख(कालियदमन)ग(केलिगोपाल)घ(रुक्मिणीहरण)ङ(पारिजात-हरण)च(रामविजय

5. गीत

)क(बरगीत)ख(भटिमा)ग(टोटय

6. नाम-कीर्तन

)क(कीर्तन-घोषा)ख(गुणमाला

ध्यान देने की बात कि है श्रीमंत शंकरदेव ने मूलत: नाटक एवं बरगीतों में ब्रजबुलि का प्रयोग किया था। भाषाविज्ञान की दृष्टि से ब्रज पश्चिमी हिंदी की एक समृद्ध बोली है। भक्तिकाल के ज्यादेतर वैष्णव कवियों ने कृष्ण लीलाभूमि ब्रजक्षेत्र की स्थानीय भाषा ब्रजभाषा या ब्रजबुलि का प्रयोग किया था। शंकरदेव ने भी ब्रजबुलि का बलिष्ठ प्रयोग किया है। इस दृष्टि से शंकरदेव असम

के प्रथम हिंदी प्रचारक हुए। अगर ब्रजभाषा में कृष्णभक्ति के काव्य लिखकर सूरदास हिंदी साहित्य के भक्तिकाल के अमर कवि हो जाते है, तो शंकरदेव क्यों नहीं?

शंकरदेव और उनके परम शिष्य माधवदेव के द्वारा रचित रागयुक्त, भक्तितत्व विषयक गीतों को ही सामान्यत: बरगीत के रूप में जाना जाता है। बरगीत असमिया साहित्य का अमूल्य संपद है। बरगीतों में प्रयुक्त ब्रजभाषा का दो नमुने देखिए-

उदाहरण-

)क(मन मेरि राम चरणहि लागु।

तइ देखना अंतक आगु।। ---- शंकरेदव

उदाहरण-

) ख(राम !तेरि चरण कमले रति लागो।

मागो भकति गोसाइ

हामु अनाथ-नाथ तुहु गोविंद

अगतिक गति आवरि कोई नाई। - माधवदेव

बरगीतों की भांति अंकीया नाटकों में भी ब्रजबुलि गद्य का प्रयोग देखा जाता है। अर्थात गद्य और पद्य दोनों रूपों में श्रीमंत शंकरदेव ने ब्रजबुलि का प्रयोग कर अपनी भाषिक निपुनता का परिचय दिया था।

उदाहरण- 1

हे सखिसव! तोहोसब परम भकत। हामार प्राणतो अधिक। हामो परिहास केलि कौतुक कयल। ताहे नाहि बुझल।)केलिगोपाल(

उदाहरण- 2

काहा याव ज्वालिया अगनि मेरी गाव

कोन आसि हामाक बोलब अब माव

धुला जारि काहाक धरबो बुके तुलि

हृदय धाकुरे यशेमती एहि बुलि।)कालियदमन(

शब्द, अर्थ, रूप, ध्वनि एवं वाक्य-तत्व की दृष्टि से शंकरदेव के द्वारा प्रयुक्त ब्रजभाषा पर शोध विचार किया जा सकता है। तीर्थयात्रा का समय शंकरदेव के भाषिक क्षेत्र अध्ययन का समय था। इस समय उन्होंने ब्रजक्षेत्र की भाषा, साहित्य एवं संस्कृति की गहरी जानकारी हासिल की थी। परवर्ती समय में अपने मौलिक प्रयोग के द्वारा ब्रजबुलि में नाटक, गीत, गद्य आदि लिखा।

आज असम तथा पूर्वोत्तर भारत में हिंदी भाषा की स्थिति मोटे तौर पर संतोषजनक है। विद्यालय स्तर से लेकर विश्वविद्यालय तक हिंदी में शिक्षण एवं अधिगम की व्यवस्था है। रोजगार के नये नये क्षेत्रों में हिंदी का उपयोग किया जा रहा है। संपर्क भाषा के रूप में भी हिंदी अहम भूमिका निभा रही अनुवाद के क्षेत्र में भी हिंदी समृद्ध हो चुकी है। महाविद्यालयों में भी नियमित रूप से हिंदी भाषा-साहित्य का अध्ययन-अध्यापन हो रहा है। विश्वविद्यालय में हिंदी भाषा-साहित्य पर शोध कार्य हो रहे हैं।

लेकिन इस मनोरस हिंदी भाषा का असम में बीजारोपन किया था श्रीमंत शंकरदेव ने। परवर्ती समय में हिंदी का अंकुरण हुआ और पल्लवन भी। आज नयी पीढ़ी के लोग इस बात को याद रखना चाहिए कि विशाल प्रतिभाशाली श्रीमंत शंकरदेव सिर्फ असमिया भाषा साहित्य को ही नही, बल्कि हिंदी प्रचार के भी अग्रदूत थे। शंकरदेव ने कोई औपचारिकता का निर्वाह न करते हुए भी अपने स्वप्नों तथा कार्यों को गति देते थे। इस महान एवं स्तुत्य कदम के लिए हिंदी प्रेमी उन्हें हमेशा सादरपूर्वाक स्मरण करेंगे।

xxxx

शिक्षा की आवश्यकता

मेनका देवी, बीए पंचम छमाही

शिक्षा जीवन की वह पहली सीढ़ी है जिसमें चढ़कर हम ज्ञान प्राप्त करते है और जीवन को सार्थक बना सकते हैं। शिक्षा का अनुशीलन जन्म से लेकर मृत्यु की अंतिम क्षण तक चलता रहता है। परिवार के द्वारा, समाज, विद्यालय आदि शिक्षानुष्ठान के द्वारा हमें विभिन्न ज्ञान प्राप्त होता है। जिससे हम अपने जीवन को आदर्श के साथ जी सकते हैं। शिक्षा के बिना हमारा जीवन निरर्थक जान पड़ता हैं। सबके लिए शिक्षित होना आवश्यक हैं। जीवन के हर एक पथ पर ज्ञान का होना आवश्यक है। शिक्षा अनुष्ठान के द्वारा शिक्षित होकर हम जीविका निर्वाह का पथ भी प्राप्त कर सकते हैं। शिक्षित होकर हम समाज में प्रचलित अंधविश्वास, पुराणे रीति-नीति को भी दूर कर सकते हैं। समाज की उन्नति पर भी यह सहायक है। शिक्षा के जरिए ही हमें ज्ञात होता है कि समाज के प्रति भी हमारा कर्तव्य है। साथ ही समाज के अनुशासन को मानकर चलना, सरकार के नियमों का पालन न करने से दंड के भागीदार बन सकते हैं इन सब का ज्ञान

भी हमें शिक्षा के माध्यम से ही मिलता हैं। किसी समस्या के हल निकालने में भी ज्ञान का होना आवश्यक होता है।

आधुनिक युग प्रतियोगितामूलक बन गया है। इसलिए समाज में कदम से कदम मिलाकर चलने में शिक्षित होना आवश्यक है। शिक्षा ही एक वह माध्यम है जो हमें भले-बुरे का ज्ञान दे सकता है ताकि हम बुरे कर्म को छोड़ भले कर्मों के द्वारा अपने-आपको कृतार्थ कर सके। अगर मनुष्य को ज्ञान प्राप्त न हो पाता तो वह भी जानवर की भांति अज्ञानी बन जाते और उनका आचरण जानवर की तरह हो जाता। न उनमें बड़ों का आदर करने की तमीज होती, न आदर्शों, रीति-परंपरा, संस्कृति को अपनाने की शक्ति अथवा चाह होती। शिक्षा के बिना कोई भी काम संभव नहीं। अत: शिक्षा मनुष्य जीवन में बड़ा ही महत्व रखता है। इसलिए हमें शिक्षित होना आवश्यक हैं।

XXXX

प्रेमचंद

संगीता राय, बी. ए.

प्रथम छमाही

प्रेमचंद जी का जन्म वाराणसी जिले के पांडेयपुर नामक कस्बे के समीप लमही नामक ग्राम में 31 मई 1880 को हुआ था। इनके पिता का नाम श्री अजायबराय जो कायस्थ घराने के सदाचारी व्यक्ति थे। वे उन दिनों डाक घर के मुंशी थे। और 20 रुपये मासिक वेतन पाते थे इनके माता का नाम आनंद देवी था। बचपन में अपने प्रिय पुत्र का नाम धनपतराय रखा जा बाद में मुंशी प्रेमचंद के नाम से जाने गये। इंह्होंने अपनी शिक्षा उर्दू में शुरु

की। उन दिनों उत्तर प्रदेश में उर्दू का प्रचलन था। प्रेमचंद जी ने सन् 1898 ई. में किंग्जवे कॉलेज से मैट्रिक पास की। इनका निधन 8 अक्टूबर 1936 को हो गया। इस प्रकार मात्र 56 वर्ष की आयु होने तक हिंदी साहित्य का भंडार पूर्ण कर दिया। प्रेमचंद जी ने अपने जीवन में लगभग 200 कहानियां लिखी। इंहोंने कर्मभूमि, कायाकल्प, प्रतिज्ञा, निर्मला एवं गोदान इत्यादि उपन्यास लिखा था।

XXXX

मेरा हिंदी प्रेम

ममी कलिता

बीए पहला छमाही

हिंदी हमारी राष्ट्रभाषा है, इसलिए हम सभी को इसके प्रति आदर-सम्मान और लगाव रखना अति जरुरी है। आजकल अंग्रेजी भाषा या विषय को ज्यादा महत्व दिया जाता है। अगर

हमलोग भाषा ज्ञानी न होते या बोल नहीं पाते तो हमलोगों को बहुत लज्जा होती हैं और हीन मान्यता महसूस करते हैं। मुझे, यही बात खटकती है कि हमलोग हिंदी भाषा के प्रति शायद इतना आदर नहीं रखते हैं। अंग्रेजी जानकर या अंग्रेजी भाषा में बात करके हमें जितनी खुशी होती है, क्या हिंदी भाषा को जानकर और बोलकर हम गौरवान्वित नहीं होते? लेकिन मुझे खुशी होती है कयोंकि मुझे इस भाषा के प्रति प्रेम हैं। शायद इसलिए आज अठारह उन्नीस सालों के बाद भी इस भाषा के अध्ययन करने में रुचि हूं।

हमें पहले पंचम वर्ग से हिंदी विषय मिलते थे और तभी से मुझे इस विषय को पढ़कर बहुत अच्छी लगती थी। इसलिए मैं असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति के माध्यम से जो परीक्षाएं होती हैं, उनमें परिचय से विशारद तक पढ़ाई कर रही थी। इसीकारण जब मैं आठवें कक्षा में पहुंची तब कई शिक्षकों ने मुझे बोला कि तुमतो हिंदी जानती हो अब तुम संस्कृत विषय ले लो। और मुझे गुरु के मान रखने के लिए बात माननी पड़ी। लेकिन मेरे मनमें अशांति होने लगी क्यों मैं हिंदी छोड़ दिया और एकदिन जाकर

किसी की न सुनकर अपनी मन की बात मान ली और संस्कृत छोड़ फिर हिंदी ले लिया।

जब मैं नवम कक्षा में थी तभी अचानक हमारे घर की कुछ बिगड़ते हालतों के कारण मेरा मन पढ़ाई से उब से गये। फिर भी मानसिक अशांति लेकर पढ़ाई कर रही थी। मेट्रिक पास करने के बाद ही मैं एक हिंदी भाषी सहेली सुमन के जरिए एक हिंदी विद्यालय में सहायिका शिक्षक के रूप में काम करने लगी। और इसके कारण मेरा कॉलेज की पढ़ाई में कही अर्चनें आने लगी क्योंकि में कॉलेज में नियमित नहीं हो पाती थी। मैं जिस कॉलेज में पढ़ती थी वहां हिंदी विषय नहीं था। इसीकारण एकबार मैं कॉलेज के सेक्रेटारी जो मेरा मामाजी थे उनसे हिंदी विषय के लिए बात भी की थी। लेकिन एक छात्रा के लिए एक विषय लाने के बारे में कई सोचता भी नहीं। तभी से मुझे हिंदी छोड़ना पड़ा।

जब मैं हायरसेंडरी पास किया तब मुझे असम राष्ट्रभाषा का जो केंद्र जहां मैं पढ़ती थी वही पढ़ाने के गुरुजी थे और अन्य कर्मकर्ताओं ने मुझे सुविधा दिया। पढ़ाने की सुविधा तो मिल गयी लेकिन हिंदी पढ़ने की सुविधा नहीं कर पायी। डिग्री में बिना मेजर की पढ़ाई करनी पड़ी थी और मुझे अच्छा नहीं लग रहा था।

और तभी मेरी शादी हो गई और पढ़ाई पर्व मानो खतम ही हो गया था। एक बच्छा होने के बाद ही मेरे पति को नौकरी मिली और हमें दूसरे जगह जाना पड़ा। जहां नौकरी मिली वहां पढ़ाई की इतनी सुविधा न होने के कारण पढ़ाई के बारे में सोचना छोड़ दिया था। परंतु हमेशा ठीक से पढ़ाई नहीं कर पाने के कारण मन में एक अशांति सी पैदा होती रहती थी। दो बच्चों के साथ समय व्यतीत हो जाती थी लेकिन मन के किसी कोणे में अपनी इच्छा को दवाकर रखने के कारण ही शायद मन अशांत रहता था। यह सोचकर पिछले साल वहां से मैं अपने दोनों बच्चों को लेकर सिर्फ सभी की पढ़ाई के खातिर गुवाहाटी चली आयी और आकर ही मैंने मेरे एडमिशन के लिए एक कॉलेज से बात की थी लेकिन नियमित नहीं मिली। मानो पढ़ाई और मेरे बीच हमेशा एक नदी के दो किनारे जैसा था।

लेकिन इसबार शायद नियति का विचार थोड़ा अलग हुआ। इसकारण मुझे आज मेरे बारे में कुछ लिखने को सौभाग्य मिली।

जब मैं कन्या महाविद्यालय में पहली दिन आयी तभी मुझे यहां के हिंदी विषय के बारे में मालुम हुआ। उसी दिन मैं

हिंदी विभाग के अध्यापकों से मेरे बारे में बात की तो उन्होंने मुझे मंजूरी दे दिया। और इसी कारण मैं इस लेखनी के जरिए उन सभी अध्यापकों को धन्यवाद प्रदान करती हूं। आज जब शर्मा सरजी ने हिंदी दिवस के लिए कुछ लिखने को कहा जब पहली बार यह लेख प्रस्तुत किया और वह भी खुद के बारे में।

इस लेखनी में अनेक भूल-त्रूटि हो सकती है इसके लिए मै क्षमा प्राथी हूं।

हिंदी दिवस के अवसर पर विशेष

खुशबू झां, बी.ए., पहला छमाही

चौदह सितंबर का समय आ गया है। एक ओर दिवस मनाने का आज हिंदी के नाम पर कई सारे कार्यक्रम होंगे जैसे कि कई सरकारी आयोजन हिंदी में काम को बढ़ावा देने वाली घोषाणाएं विभिन्न तरह के सम्मेलन इत्यादि। हिंदी की दुर्दशा पर घ़डियाली आंसू बहाएं जाएंगे, हिंदी में काम करने की झूठी शपथें ली जाएंगी और पता नहीं क्या-क्या होगा। अगले दिन लोग सब कुछ भूल कर अपने-अपने काम में लग जाएंगे और हिंदी वही सिसकती ठुकराई हुई रह जाएंगी।

वास्वत में हिंदी तो केवल उन लोगों की कार्य भाषा है जिनको या तो अंग्रेजी आती नहीं, या फिर कुछ पढ़े-लिखे लोग जिनको हिंदी से कुछ ज्यादा ही मोह है और ऐसे लोगों को सिरीफिरी पिछड़े या बेवकूफ की संज्ञा से सम्मानित कर दिया जाता है।

ज्यादातर आजकल कानून या अन्य काम की बातें, किताबें इत्यादि अंग्रेजी में होते हैं उपकरणों या यंत्रों को प्रयोग करने की विधि अंग्रेजी में लिखे होते हैं। भले ही उसका प्रयोग किसी अंग्रेजी के ज्ञान से वंचित व्यक्ति को करना हो। अंग्रेजी भारतीय मानसिकता पर पूरी तरह से हावी हो गई है। हिंदी के नाम पर छलावे या ढोंग के सिवा कुछ नहीं होता हैं।

दुनिया के लगभग सारे मुख्य विकसित व विकासशील देशों में वहां का काम उनकी भाषाओं में ही होता है। यहां तक कई सारी बहुराष्ट्रीय कंपनियां अंग्रेजी के अलावा और भाषाओं के ज्ञान को महत्व देती है। केवल हमारे यहां ही हमारी भाषाओं में काम करने को छोटा समझता है। हमारे यहां बड़े-बड़े नेता अधिकारीगण व्यापारी हिंदी के नाम पर लंबे-चौड़े भाषण देते हैं किंतु अपने बच्चों को अंग्रेजी माध्यम के स्कूलों में पढ़ाएंगे। उन

स्कूलों को बढ़ावा देंगे। अंग्रेजी में बात करना या बीच-बीच में अंग्रेजी के शब्दों का प्रयोग शान का प्रतीक समझेंगे और पता नहीं क्या–क्या।

भारतीय भाषाओं के माध्यम के विद्यालयों का आज जो हाल है वो किसी से छुपा नहीं है। सरकारी व सामाजिक उपेक्षा के कारण ये स्कूल आज केवल उन बच्चों के लिए हैं जिनके पास या तो कोई और विकल्प नहीं है जैसे कि ग्रामीण क्षेत्र या फिर आर्थिक तंगी। इन स्कूलों में न तो अच्छे अध्यापक है न ही कोई सुविधाएं तो फिर कैसे हम इन विद्यालयों के छात्रों को कुशल बनाने की उम्मीद कर सकते हैं और जब ये छात्र विभिन्न परीक्षाओं में असफल रहते हैं तो इसका कारण ये बताया जाता है कि ये लोग अपनी भाषा के माध्यम से पढ़े हैं इसलिए खराब हैं। कितना सफेद झूठ? दोष है हमारी मानसिकता का और बदनाम होती है भाषा। आज इतना प्रौद्योगिकी के बादशाह कहलाने के बाद भी हम हमारी भाषाओं में काम करने वाले कंप्यूटर नहीं विकसित कर पाए है। किसी पढ़े-लिखे व्यक्ति को अपनी मातृभाषा की लिपि में लिखना तो आजकल शायद ही देखने को मिले। क्या यही हमारी आजादी का प्रतीक है? मानसिक रूप से तो हम अभी भी

अंग्रेजियत के गुलाम हैं।

इसका मतलब यह भी नहीं है कि भावी पीढ़ी को अंग्रेजी से वंचित रखा जाएं, अंग्रेजी पढ़े सीखे परंतु साथ-साथ यह भी आवश्यक है कि अंग्रेजी को उतना ही सम्मान दे जितना कि जरूरी है। उसको साम्राज्ञी न बनाएं, उसकी हमारे दिलोदिमाग पर राज करने से रोंके और इसमें सबसे बड़े योगदान की जरूरत है समाज के पढ़े-लिखे वर्ग से, युवाओं से उच्चपदों पर आसीन लोगों से, अधिकारी वर्ग से बड़े औद्योगिक धरानों से। पर साथ-साथ हमको महात्मा गांधी के शब्द “कोई भी राष्ट्र नकल करके बहुत ऊपर नहीं उठता है और महान नहीं बनता है” याद रखना चाहिए।

xxxx

हिंदी दिवस के अवसर पर विशेष

खुशबू झां, बी.ए., पहला छमाही

चौदह सितंबर का समय आ गया है। एक ओर दिवस मनाने का आज हिंदी के नाम पर कई सारे कार्यक्रम होंगे जैसे कि कई सरकारी आयोजन हिंदी में काम को बढ़ावा देने वाली घोषाणाएं विभिन्न तरह के सम्मेलन इत्यादि। हिंदी की दुर्दशा पर घड़ियाली आंसू बहाएं जाएंगे, हिंदी में काम करने की झूठी शपथें ली जाएंगी और पता नहीं क्या-क्या होगा। अगले दिन लोग सब कुछ भूल कर अपने-अपने काम में लग जाएंगे और हिंदी वही सिसकती ठुकराई हुई रह जाएंगी।

वास्वत में हिंदी तो केवल उन लोगों की कार्य भाषा है जिनको या तो अंग्रेजी आती नहीं, या फिर कुछ पढ़े-लिखे लोग जिनको हिंदी से कुछ ज्यादा ही मोह है और ऐसे लोगों को सिरीफिरी पिछड़े या बेवकूफ की संज्ञा से सम्मानित कर दिया जाता है।

ज्यादातर आजकल कानून या अन्य काम की बातें, किताबें इत्यादि अंग्रेजी में होते हैं उपकरणों या यंत्रों को प्रयोग करने की विधि अंग्रेजी में लिखे होते हैं। भले ही उसका प्रयोग किसी अंग्रेजी के ज्ञान से वंचित व्यक्ति को करना हो। अंग्रेजी भारतीय मानसिकता पर पूरी तरह से हावी हो गई है। हिंदी के नाम पर छलावे या ढोंग के सिवा कुछ नहीं होता हैं।

दुनिया के लगभग सारे मुख्य विकसित व विकासशील देशों में वहां का काम उनकी भाषाओं में ही होता है। यहां तक कई सारी बहुराष्ट्रीय कंपनियां अंग्रेजी के अलावा और भाषाओं के ज्ञान को महत्व देती है। केवल हमारे यहां ही हमारी भाषाओं में काम करने को छोटा समझता है। हमारे यहां बड़े-बड़े नेता अधिकारीगण व्यापारी हिंदी के नाम पर लंबे-चौड़े भाषण देते हैं किंतु अपने बच्चों को अंग्रेजी माध्यम के स्कूलों में पढ़ाएंगे। उन स्कूलों को बढ़ावा देंगे। अंग्रेजी में बात करना या बीच-बीच में अंग्रेजी के शब्दों का प्रयोग शान का प्रतीक समझेंगे और पता नहीं क्या–क्या।

भारतीय भाषाओं के माध्यम के विद्यालयों का आज जो हाल है वो किसी से छुपा नहीं है। सरकारी व सामाजिक उपेक्षा के

कारण ये स्कूल आज केवल उन बच्चों के लिए हैं जिनके पास या तो कोई और विकल्प नहीं है जैसे कि ग्रामीण क्षेत्र या फिर आर्थिक तंगी। इन स्कूलों में न तो अच्छे अध्यापक है न ही कोई सुविधाएं तो फिर कैसे हम इन विद्यालयों के छात्रों को कुशल बनाने की उम्मीद कर सकते हैं और जब ये छात्र विभिन्न परीक्षाओं में असफल रहते हैं तो इसका कारण ये बताया जाता है कि ये लोग अपनी भाषा के माध्यम से पढ़े हैं इसलिए खराब हैं। कितना सफेद झूठ? दोष है हमारी मानसिकता का और बदनाम होती है भाषा। आज इतना प्रौद्योगिकी के बादशाह कहलाने के बाद भी हम हमारी भाषाओं में काम करने वाले कंप्यूटर नहीं विकसित कर पाए है। किसी पढ़े-लिखे व्यक्ति को अपनी मातृभाषा की लिपि में लिखना तो आजकल शायद ही देखने को मिले। क्या यही हमारी आजादी का प्रतीक है? मानसिक रूप से तो हम अभी भी अंग्रेजियत के गुलाम हैं।

इसका मतलब यह भी नहीं है कि भावी पीढ़ी को अंग्रेजी से वंचित रखा जाएं, अंग्रेजी पढ़े सीखे परंतु साथ-साथ यह भी आवश्यक है कि अंग्रेजी को उतना ही सम्मान दे जितना कि जरूरी है। उसको साम्राज्ञी न बनाएं, उसकी हमारे दिलोदिमाग पर राज करने से रोंके और इसमें सबसे बड़े योगदान की जरूरत है समाज

के पढ़े-लिखे वर्ग से, युवाओं से उच्चपदों पर आसीन लोगों से, अधिकारी वर्ग से बड़े औद्योगिक धरानों से। पर साथ-साथ हमको महात्मा गांधी के शब्द “कोई भी राष्ट्र नकल करके बहुत ऊपर नहीं उठता है और महान नहीं बनता है” याद रखना चाहिए।

XXXX

कविता खंड

पेड़ की विपदा

सुबला सिंहा,

तीसरा छमाही

मैं पेड़ हूं, सुनो मेरी कहानी

मेरा ही जबानी

मैं यहां स्तब्ध खड़ा हूं

कितने मौसम आए गए

कितने उतार-चढ़ाव हुए

फिर भी स्तब्ध खड़ा हूं

मैं पेड़ हूं।

मैं पेड़ हूं, मेरे छावों में तुम खेले हो

मेरे बाहों में तुम झूले हो

मैंने दिलाई तुम्हें प्यारी सी हंसी

जब भी थके तुम खेलकर

जब मेरी पनाह में तुम सोए हो

फिर भी स्तब्ध खड़ा हूं

मैं पेड़ हूं।

मैं पेड़ हूं शायद तुम मुझको भुल गए आज

तुम आगे से गुजर गए, मुड़ के देखा नहीं दोबारा

तुम्हें अब न छांव को चाहत

और न जिंदगी में मेरा जरुरत

मुझे मंजूर है अब कटना

खूशी तुम्हारी जिसमें है

xxxx

जीवन

मेनका देवी, बी. ए.
पंचम छमाही

जहां हम एक मुस्कान से

भूल सकते है हजारों दु:ख।

वही तो हैं जीवन।

हे प्रिया!

शरदऋतु के बाद वसंत

रात के बाद दिन और

दु:ख के बाद सुख

यही तो हैं जीवन।

दु:खहीन जीवन का

महत्व ही क्या?

यही तो हैं जीवन

जहां हम एक मुस्कान से

भूल सकते हैं हजारो दु:ख।

क्योंकि मैं पेड़ हूं।